बहादुरशाह ज़फ़र

लगता नहीं है दिल मेरा उजड़े दयार में
किसकी बनी है आलमे-नापायदार में
बुलबुल को बागबाँ से न सय्याद से गिला
किस्मत में कैद लिखी थी, फ़सले बहार में
इन हसरतों से कह दो कहीं और जा बसें
इतनी जगह कहाँ है दिले-दागदार में
इक शाखे-गुल पे बैठ के बुलबुल है शादमाँ
काँटे बिछा दिए हैं दिले-लालहज़ार में
उम्रे-दराज़ माँग के लाए थे चार दिन
दो आरज़ू में कट गए दो इंतज़ार में
दिन ज़िंदगी के खत्म हुए शाम हो गई
फैला के पाँव सोएँगे कुंजे-मज़ार में
कितना है बदनसीब ज़फ़र दफ़्न के लिए
दो गज़ ज़मीन भी न मिली कूए-यार में

(1857 के 150 वर्ष होने पर)